सिमरन

भाग - ७

गुरबाणी में प्रभु के सिमरन को 'समस्त सुखों का सागर' कहा गया है। सिमरन करने से दुख, क्लेश, चिंता, फिकर, शक, डर, भय, भ्रम आदि दूर हो जाते हैं, मन तथा तन शान्त और शीतल हो जाता है।

चिति आवै ओसु पारब्रहमु तनु मनु सीतलु होइ ॥ (पृ. ७०)

नानक प्रभू धिआईऐ भाई **मनु तनु सीतलु होइ** ॥ (पृ. ६२०)

सिमरि सिमरि सुआमी प्रभु अपना **सीतल मनु तनु छाती** ॥ (पृ. ६८१)

सीतल सुखु पाइओ मन त्रिपते हरि सिमरत स्रम सगले लाथ ॥ (पृ. ८२८)

हरि सिमरत सदा होइ अनंदु सुखु
अंतरि सांति सीतल मनु अपना ॥ (पृ. ८६०)

सिमरि सिमरि सुआमी **भए सीतल**
दूखु दरदु भ्रमु हिरिआ ॥ (पृ. १२१९)

हरि-सिमरन द्वारा माया के 'अग्नि-शोक-सागर' का ताप हमें नहीं लगता। निर्बल तथा मुर्झाई हुई आत्माएं भी सिमरन द्वारा प्रस्फुटित होकर हरी-भरी हो जाती हैं –

चिति आवै ओसु पारब्रहमु लगै न तती वाउ ॥ (पृ. ७०)

सिमरत सिमरत प्रभ का नाउ ॥
सगल रोग का बिनसिआ थाउ ॥ (पृ. १९१)

सिमरनि ता कै मिटहि संताप ॥
होइ अनंदु न विआपहि ताप ॥ (पृ. ११४२)

महा कसट काटै खिन भीतरि रसना नामु चितारे ॥
सीतल साति सूख हरि सरणी जलती अगनि निवारे ॥ (पृ. २१०)

जिह सिमरनि तेरी जाइ बलाइ ॥
जिह सिमरनि तुझु पोहै न माइ ॥ (पृ. ९७१)

जिसु सिमरत होत सूके हरे ॥
जिसु सिमरत डूबत पाहन तरे ॥ (पृ. १८२-८३)

हरि को **भुलाकर** हम माया के **'भवजल बिखम असगाह'** (अथाह विकट सागर) में सारी उम्र गोते खाते रहते हैं। फलस्वरूप दुखी होकर नरकमयी जीवन व्यतीत करते हैं। इस 'अथाह विकट सागर' से निकलने या पार उतरने के लिए गुरबाणी **'हरि-सिमरन'** की ही प्रेरणा करती है –

गुरमुखि जिनी अराधिआ तिनी तरिआ भउजलु संसारु ॥ (पृ. 90)

सिमरि सिमरि पूरन नाराइन संगी सगले तारिआ ॥
(पृ. ६७४-७५)

सिमरि सिमरि नानक तरे हरि के रंग लाल ॥ (पृ. ८०७)

सिमरि हरि हरि सदा नानक तरे कई अनेक ॥ (पृ. १००७)

चलत बैसत सोवत जागत गुर मंत्रु रिदै चितारि ॥
चरण सरण भजु संगि साधू भव सागर उतरहि पारि ॥
(पृ. १००६-०७)

हरि एकु सिमरि एकु सिमरि एकु सिमरि पिआरे ॥
कलि कलेस लोभ मोह महा भउजलु तारे ॥ (पृ. ६७९)

भागु पूरा तिन जागिआ जपिआ निरंकारु ॥
साधू संगति लगिआ तरिआ संसारु ॥ (पृ. १२५१)

हम दिमागी ज्ञान तो बहुत घोटते हैं। अपने आप को ठीक सिद्ध करने के लिए 'बाल की खाल' तक निकालते हैं। इस दिमागी धार्मिक वाद-विवाद को ही हम **'परमार्थ' समझ कर फूले नहीं समाते।** परन्तु गुरबाणी अनुसार यह दिमागी ज्ञान हमको केवल आत्मिक टोह या दिशा ही दे सकता है, **अन्तरात्मा में अनुभवी 'प्रकाश' नहीं करा सकता।**

गुरमत अनुसार हमारी अन्तरात्मा में 'तत्-ज्ञान' का **प्रकाश** 'गुरु-कृपा' द्वारा साध-संगति में विचरण करते हुए 'सिमरन' द्वारा ही हो सकता है। सिमरन द्वारा ही हमारे हृदय का **'कमल' खिलता है।**

मन पिआरिआ जीउ मित्रा
हरि नामु जपत परगासो ॥ (पृ. ७९)

हरि गुण **जपत कमलु परगासै ॥** (पृ. १८९)

प्रभ कै **सिमरनि कमल बिगासनु ॥** (पृ. २६३)

जिसु सिमरत मनि होइ प्रगासु ॥
मिटहि कलेस सुख सहजि निवासु ॥ (पृ. ११४८)

जुगह जुगंतरि इहु ततु सारु ॥
हरि सिमरणु साचा बीचारु ॥ (पृ. ११४३-४४)

गुरमुखि गिआनु एको है जाता
अनदिनु नामु रवीजै हे ॥ (पृ. १०५०)

गुर जपु जापि जपत फलु पाइआ
गिआन दीपकु संत संगना ॥ (पृ. १०८०)

सोई गिआनी जि सिमरै एक ॥
सो धनवंता जिसु बुधि बिबेक ॥ (पृ. ११५०)

जन्मों-जन्मों से माया का सिमरन करते हुए हम माया का ही रूप बन चुके हैं। हर समय हम मायकी कार्यों में खोये रहते हैं तथा उनको सुचारु रूप से चलाने के लिए अनेक योजनाएं बनाते हैं, चतुराई दिखाते हैं, कई तरह के हथकडे प्रयोग करते हैं, जब फिर भी असफल होते हैं तो दुखी

होते हैं। परन्तु गुरबाणी अनुसार प्रभु-सिमरन द्वारा हमारे सारे साँसारिक कार्य भी अचिन्त ही सँवर जाते हैं –

संतहु हरि हरि हरि आराधहु ॥
हरि आराधि **सभो किछु पाईऐ कारज सगले साधहु ॥**
(पृ. ६२७)

हरि हरि रसना जो जपै तिसु पूरन कामु ॥ (पृ. ४०१)

सिमरि सिमरि पूरन प्रभू **कारज भए रासि ॥** (पृ. ८१६)

जो जन तुमरी भगति करंते तिन के काज सवारता ॥ (पृ. 695)

गोविद भजु सभि सुआरथ पूरे नानक कबहु न हारि ॥
(पृ. १००७)

कहु नानक मन सिमरु तिह पूरन होवहि काम ॥ (पृ. १४२८)

अचिंत कंम करहि प्रभ तिन के जिन हरि का नामु पिआरा ॥
(पृ. ६३८)

परन्तु हम भगवान को **भूलकर** 'सिमरन' करने में बेपरवाही तथा ढील कर जाते हैं। इस प्रकार हम 'पलचि पलचि सगली मुई झूठे धंधै मोहु' वाला जीवन व्यतीत करके दुखी होते हैं तथा नरक भोगते हैं –

हरि के नाम बिना दुखु पावै ॥ (पृ. ८३०)

हरि नामु न सिमरहि साधसगि तै तनि उडै खेह ॥ (पृ. ५५३)

जिनी नामु **विसारिआ** से होत देखे खेह ॥ (पृ. १००६)

हम अनेक जन्मों से **माया की 'संगत' तथा 'सिमरन'** करते आये हैं, जिस कारण हमारे मन पर अत्यन्त गहरी **मायकी मैल चढ़ी हुई है।** इतना ही बस नहीं, हम अपने तुच्छ मायिकी ख्यालों, विचारों तथा कर्मों द्वारा **दिन-रात और मैल चढ़ाई जाते हैं।**

जनम जनम की इसु मन कउ मलु लागी काला होआ सिआहु ॥
(पृ. ६५१)

मैला हरि के नाम बिनु जीउ ॥ (पृ. १२२४)

ऐसे मैले मन द्वारा भक्ति नहीं हो सकती ॥

मनि मैलै भगति न होवई नामु न पाइआ जाइ ॥
(पृ. ३९)

मन की ऐसी गहरी मायिकी **मैल** को उतारने के लिए गुरबाणी में **'हरि का सिमरन'** ही लाभदायक साधन बताया गया है –

प्रभ कै सिमरनि मन की मलु जाइ ॥ (पृ. २६३)

हरि की भगति करहु मन मीत ॥
निरमल होइ तुम्हारो चीत ॥ (पृ. २८८)

जो जो जपै सु होइ पुनीत ॥
भगति भाइ लावै मन हीत ॥ (पृ. २९०)

जिसु सिमरत मनि होत अनंदा
उतरै मनहु जंगीला ॥ (पृ. ४९८)

अहिनिसि नामु जपहु रे प्राणी मैले हछे होही ॥ (पृ. १२५४)

मन के बिकार मिटहि **प्रभ सिमरत**
जनम जनम की मैलु हरी ॥ (पृ. 1152)

अबिनासी जीअन को दाता सिमरत सभ मलु खोई ॥ (पृ. ६१७)

करि साधसंगति सिमरु माधो होहि पतित पुनीत ॥ (पृ. 631)

जिस प्रकार छाया में होने से हम सूरज के अनेक गुणों से वचित हो जाते हैं तथा अन्धेरे के सारे अवगुण हम पर लागू हो जाते हैं। इसी प्रकार अकाल पुरुष को **'भुलाकर'** माया परायण होकर, हम जन्मों-जन्मों से पाप कमाते आये हैं तथा जाने-अनजाने अब भी पाप कमा रहे हैं। इस प्रकार हम स्वयं आमन्त्रित दुख-क्लेश भोगते हुए, अपनी लगाई हुई **पापों की गुप्त अग्नि** में जलते रहते हैं।

इन शारीरिक, मानसिक तथा आत्मिक **पापों से बचने के लिए**

तथा पिछले किये हुए पापों की **निवृत्ति के लिए 'भूल से याद'** में आना, अर्थात प्रभु का **'सिमरन'** ही एकमात्र सरल साधन है, जिसकी गुरबाणी पुष्टि करती है –

ताप पाप संताप बिनासे ॥
हरि सिमरत **किलविख सभि नासे** ॥ (पृ. ८०६)

जन नानक अनदिनु नामु धिआइआ
हरि सिमरत किलविख पाप गइआ ॥ (पृ. ३०७)

हरि हरि नामु जिनी आराधिआ
तिन के दुख पाप निवारे ॥ (पृ. ५७४)

सिमरि सिमरि सुआमी प्रभु अपना
सगले पाप तजावहि राम ॥ (पृ. ७८१)

हरि हरि नामु धिआइ मन हरि दरगह पावहि मानु ॥
जो इछहि सो फलु पाइसी गुर सबदी लगै धिआनु ॥
किलविख पाप सभि कटीअहि हउमै चुकै गुमानु ॥ (पृ. १३१३)

तिन के पाप इक निमख सभि लाथे
जिन गुर बचनी हरि जापिआ ॥ (पृ. 1115)

माया के भ्रम में 'मैं-मेरी' का अटूट अभ्यास करते हुए 'अहम्' का **'भूत'** हमारे सिर चढ़ा हुआ है। इसने अपने सैनिकों – काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार आदि द्वारा हमें कैद किया हुआ है। 'हउमैं' या मैं-मेरी के अहसास में माया परायण होकर हम कर्म करते तथा परिणाम भोगते हैं।

इस कूड़ **'अहम्' के 'दीर्घ रोग' से बचने का गुरबाणी में** एकमात्र सरल साधन **'सिमरन' ही बताया गया है** –

गुर बचनी जिना जपिआ मेरा हरि हरि
तिन के हउमै रोग गए ॥ (पृ. ७३५)

हरि हरि हरि अउखधु जगि पूरा
जपि हरि हरि हउमै मारी ॥ (पृ. ६६६)

जिन जपिआ इक मनि इक चिति
तिन लथा हउमै भारु ।। (पृ. ३०२)

हरि हरि नामु जपै दिनु राती
गुरमुखि हउमै कढै धोइ ।। (पृ. ११७७)

सिमरि सिमरि नानक प्रभ जीवै
बिनसि जाइ अभिमान ।। (पृ. १२२१)

गुर सबदी **मनु निरमलु होआ** चूका मनि अभिमानु ।।
(पृ. १३३४)

जिना इक मनि इक चिति धिआइआ सतिगुर सउ चितु लाइ ।।
तिन की दुख भुख हउमै वडा रोगु गइआ
निरदोख भए लिव लाइ ।। (पृ. १४२३)

'जो जो दीसै सो सो रोगी ।। रोग रहित मेरा सतिगुर जोगी ।।' के गुरुवाक अनुसार हम सभी जीव किसी न किसी शारीरिक, मानसिक अथवा आध्यात्मिक **रोग से ग्रसित हैं ।** इन रोगों का हम अपनी-अपनी समझ, योग्यता तथा सामर्थ्य अनुसार इलाज करते हैं, परन्तु फिर भी हम पूर्णतया **निरोग** नहीं हो पाते । इसका **कारण यह है कि हमारा जीवन माया के भ्रम में है या 'अहम्' परायण है ।**

सारे शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक रोगों का 'केन्द्र' या स्रोत **'माया' का 'भ्रम-भुलाव' ही है ।** इसलिए गुरबाणी अनुसार समस्त रोगों का एकमात्र, पक्का इलाज हरि को याद करना या **सिमरन करना है** – क्योकि सिमरन द्वारा **रोग रहित आरोग हरि की संगति करके** ही हम निरोग हो सकते हैं । इस प्रकार प्रभु का **'सिमरन' सभी रोगों की 'औषधि' भी है** –

गुरमुखि जपि सभि रोग गवाइआ **अरोगत भए** सरीरा ।।
(पृ. ५७४)

हरि सिमरत तनु मनु हरिआ लहि जाहि विजोग ।।
साधसगि हरि गुण रमहु बिनसे सभि रोग ।। (पृ. ७०६)

हरि हरि हरि आराधीऐ होईऐ आरोग ॥ (पृ. ८१७)

सरब सिधि कारज सभि सवरे अंह रोग सगल ही खइआ ॥
कोटि पराध खिन महि खउ भई है गुर मिलि हरि हरि कहिआ ॥
(पृ. १२१३)

रोग सोग मिटे प्रभ धिआए ॥
मन बांछत पूरन फल पाए ॥ (पृ. ८६६)

सरब रोग का अउखदु नामु ॥ (पृ. २७४)

अनिक उपावी रोगु न जाइ ॥
रोगु मिटै हरि अवखधु लाइ ॥ (पृ. २८८)

हम माया परायण होकर कर्म करते तथा दुख भोगते हैं। माया के अधीन मोह-माया में कर्म-बद्ध होकर हमें जन्म-मरण के चक्कर या आवागमन में फँसना पड़ता है। इस प्रकार हर जन्म में हम अपने-अपने किये कर्मों अनुसार दुख-सुख सहते हैं।

माया के इस **जन्म मरण के चक्र** में से निकलने का साधन गुरबाणी इस प्रकार बताती है –

धिआइ सो प्रभु **तरे भवजल रहे आवण जाणा ॥**
सदा सुखु कलिआण कीरतनु प्रभ लगा मीठा भाणा ॥ (पृ. ९२६)

नानकु सिमरै एकु नामु फिरि बहुड़ि न धाई ॥ (पृ. ११९३)

जो जो जपै सोई वडभागी **बहुड़ि न जोनी पावणा ॥**
(पृ. 1086)

जा कै सिमरणि होइ अनंदा **बिनसै जनम मरण भै दुखी ॥**
चारि पदारथ नव निधि पावहि बहुरि न त्रिसना भुखी ॥
(पृ. ६१७)

जा कै मनि वूठा प्रभु अपना ॥
पूरै करमि गुर का जपु जपना ॥
सरब निरंतरि सो प्रभु जाता **बहुड़ि न जोनी भरमि रुना ॥**
(पृ. १०७९)

सारी सृष्टि कूड़ माया के 'भ्रम' में गलतान है। रेशम के कीड़े की तरह जीव ने अपने चारों ओर **'भ्रम का खोल'** बनाया हुआ है। इस **अन्धेर-खाते** में ही हम जन्म लेते, जीवन जीते, कर्म करते, दुख भोगते, मरते तथा पुनः जन्म लेते आये हैं –

भरमहि जोनि असंख मरि जनमहि आवही ॥ (पृ. ७०५)

भ्रम के इस अन्धकार को दूर करने के लिए गुरबाणी हमें **'सिमरन'** करने का उपदेश देती है –

हरि हरि करत **मिटे सभि भरमा ॥** (पृ. ८७४)

जपि गोविद **भरमु भउ फाटा ॥** (पृ. १००४)

सिमरि सिमरि सुआमी भए सीतल
दूखु दरदु **भ्रमु हिरिआ ॥** (पृ. १२१९)

भोर भरम काटे प्रभ सिमरत
गिआन अंजन मिलि सोवत जागी ॥ (पृ. १३०१)

संसार के आवागमन के चक्कर से बचने के लिए तथा स्वर्ग के सुखों के लालच के लिए मनुष्य **'मुक्ति' की इच्छा** रखता है। इसकी प्राप्ति के लिए अहम् के भ्रम-भुलाव में हम कई प्रकार के कर्म-कांड करते हैं, साधनाएं करते हैं। परन्तु गुरबाणी 'मुक्ति' का सरल साधन 'सिमरन' ही बताती है –

मानस जनमु दीओ जिह ठाकुरि सो तै किउ बिसराइओ ॥
मुकतु होत नर जा कै सिमरै निमख न ता कउ गाइओ ॥
(पृ. ९०२)

सरब बैकुंठ **मुकति मोख पाए ॥**
एक निमख हरि के गुन गाए ॥ (पृ. 290)

जिह सिमरनि होइ **मुकति दुआरु ॥**
जाहि बैकुठि नही संसारि ॥ (पृ. ९७१)

ऐसा सिमरनु करि मन माहि ॥
बिनु सिमरन **मुकति कत नाहि ॥** (पृ. ९७१)

हम माया में इतने गलतान हो चुके हैं कि 'माया' का ही स्वरूप बन चुके हैं । **कूड़ी माया का सिमरन ही हमारा जीवन बन गया है ।** इस कारण परमेश्वर को भूलकर हम उससे विमुख हो गये हैं, जिससे हमारी हालत '**पलचि पलचि सगली मुई** झूठे धंधै मोहु' वाली हो गयी है ।

माया के इस घोर कलयुगी '**भ्रम-भुलाव**' में से जीव को निकाल कर 'आत्म-परायण' करने की **सबसे आसान तथा सरल विधि** साध-संगति ही बतायी गयी है । बख्शे हुए गुरमुख प्यारों की संगति द्वारा ही हम संसार-सागर को पार कर सकते हैं –

साधसंगति बिनु **तरिओ न कोइ ॥** (पृ. ३७३)

साधसंगति **निहचउ है तरणा ॥** (पृ. १०७१)

इस लिए गुरबाणी में जिज्ञासुओं को **साध-संगति में 'सिमरन' करने की** ताकीद की गयी है, जहाँ पर 'जागृत-ज्योतियों' की प्रबल **दामनिक किरणें** सहज ही **नाम का रंग बिखेरती हैं** –

तितु जाइ बहहु सतसंगती जिथै हरि का हरि नामु बिलोईऐ ॥
(पृ. ५८७)

साधसंगि हरि कै रंगि गोबिंद सिमरण लागिआ ॥ (पृ. ४५७)

प्रभ का सिमरनु **साध कै संगि ॥**
सरब निधान नानक हरि रंगि ॥ (पृ. २६२)

हरि हरि सिमरहु संत गोपाला ॥
साधसंगि मिलि नामु धिआवहु पूरन होवै घाला ॥ (पृ. ६१७)

गुरु पूरा वडभागी पाईऐ ॥
मिलि साधू हरि नामु धिआईऐ ॥ (पृ. 804)

सरब कारज सिधि भए गाइ गुन गुपाल ॥
मिलि साधसंगति प्रभू सिमरे नाठिआ दुख काल ॥ (पृ. १३२२)

आवत जात रहे स्रम नसे **सिमरत साधू संगि ॥**
पतित पुनीत होहि खिन भीतरि पारब्रहम कै रंगि ॥ (पृ. १३००)

मिलु साधसंगति भजु केवल नाम ॥ (पृ. १२)

कई जिज्ञासु मानसिक शक्तियों या रिद्धियों-सिद्धियों को ही परमार्थ समझकर इनकी प्राप्ति के लिए अनेक प्रकार की साधनाएं करते हैं। इस प्रकार कई तरह के **हठ-धर्मों** में गलतान होकर वह अपना अमूल्य जीवन व्यर्थ खो देते हैं।

गुरबाणी अनुसार यह **रिद्धियां-सिद्धियां** तथा अन्य अनेक प्रकार की **मानसिक शक्तियाँ,** जिज्ञासुओं को 'सिमरन' करते हुए, **सहज ही प्राप्त हो जाती हैं।** परन्तु गुरसिख इनको **'फोकट कर्म' ही समझते हैं** तथा इनको **प्रयोग करने से संकोच करते हैं।**

प्रभ कै सिमरनि रिधि सिधि नउ निधि ॥ (पृ. २६२)

नव निधी अठारह सिधी पिछै लगीआ फिरहि
जो हरि हिरदै सदा वसाइ ॥ (पृ. ६४९)

नव निधे नउ निधे मेरे घर महि आई राम ॥
सभु किछु मै सभु किछु पाइआ नामु धिआई राम ॥ (पृ. ४५२)

जिह सतिगुर सिमरथि रिधि सिधि नव निधि पावै ॥ (पृ. १४०५)

परमेश्वर **'प्रेम स्वरूप'** है तभी उसको गुरबाणी में **'प्रेम पुरख'** कहा गया है। परमेश्वर की सारी सृष्टि में भी, दैवीय **'प्रेम धारा'** बह रही है, जिसे **'हुकुम'** कहा गया है। इस दैवीय **प्रीत-डोरी के बिना** एक क्षण में ही सारी सृष्टि तहस-नहस होकर तबाह हो सकती है। इस घोर कलयुग में इलाही **'प्रीत-डोरी' ढीली पड़ने के कारण** ही संसार में –

ईर्ष्या-द्वेष
वैर-विरोध
लड़ाई-झगड़े
वाद-विवाद

स्वार्थ

धार्मिक कट्टरता

घृणा

आदि **'मायकी अवगुण'** प्रचलित हैं तथा इनका बोलबाला है ।

इस दैवीय 'प्रीत-डोरी' को **पुनः जोड़ने तथा 'मजबूत' करने** के लिए गुरबाणी में साधसंगति अथवा **सतिसंगति करने की प्रेरणा** दी गई है, क्योकि –

जो जैसी संगति मिलै सो तैसो फलु खाइ ।। (पृ. १३६९)

साध-संगति में विचरण करते हुए **दामनिक अति प्रबल इलाही वातावरण** (Divine Aura) में सहज ही हरि का सिमरन होता है । इस पवित्र पावन **आत्मिक वातावरण में प्रेम-स्वैपना की लहरें उठती हैं,** जिनका हमारे मन पर **दैवीय असर पड़ता है** तथा हमारी आत्मा **'प्रेम स्वैपना' का 'रंग रस' भोगती है** –

मेरे मन मुखि हरि हरि हरि बोलीऐ ।।
गुरमुखि रगि चलूलै राती **हरि प्रेम भीनी चोलीऐ** ।। (पृ. ५२७)

गुरमुखि जपीऐ **अंतरि पिआरि** ।। (पृ. ९४१)

सचा उपदेसु हरि जापणा हरि सिउ बणि आई ।।
ऐथै सुखदाता मनि वसै अति होइ सखाई ।।
हरि सिउ प्रीति ऊपजी गुरि सोझी पाई ।। (पृ. १०८७)

अहं तोरो मुखु जोरो ।। गुरु गुरु करत मनु लोरो ।।
प्रिअ प्रीति पिआरो मोरो ।। (पृ. १३०६)

गुरमती हरि हरि बोले ।।
हरि प्रेमि कसाई दिनसु राति हरि रती हरि रगि चोले ।।
(पृ. १४२४)

साचु कहों सुन लेहु सभै
जिन प्रेमु कीओ तिन ही प्रभु पाइओ ।। (त्वप्रसादि सवैये पाः १०)

- क्रमशः